International Journal on Science and Technology (IJSAT)
E-ISSN: 2229-7677 ● Website: www.ijsat.org ● Email: editor@ijsat.org

भूमि व्यवस्था पर धर्म आधारित शासनिक वैचारिकी के प्रभाव कौटिल्य से वर्तमान तक भारत की भूमि नीतियों की तुलनात्मक विवेचना

डॉ- राजेंद्र प्रसाद अग्रवाल

एम. एससी. (भौतिक विज्ञान), नेट-जेआरएफ] बी.एड. पी.एचडी.(लोक प्रशासन)

राजस्थान प्रशासनिक सेवा संवर्ग अधिकारी वर्तमान विशिष्ट सहायक, माननीय जल संसाधन कैबिनेट मंत्री, राजस्थान सरकार, तहसीलदार, एसडीएम एवं एडीएम रहते हुए 25 वर्ष का न्यायिक अनुभव

1.सारांश

अर्थव्यवस्था] सामाजिक स्थिरता] सत्ता नियंत्रण और कराधान में भूमि के महत्त्व को देखते हुए भूमि नीतियाँ सदैव शासन के केंद्र में रही हैं। यह आलेख भारत में वैदिकयुग से वर्तमान तक के शासन में धार्मिक दृष्टिकोण एवं इस कालावधि की भूमि नीतियों के प्रभाव को प्रस्तुत करता है। प्राचीन भारत में भूमि एवं प्राकृतिक संसाधनों पर राज्य और समुदाय का साझा स्वामित्व था। कौटिल्यीय भूमि व्यवस्था राज्य के नियंत्रणाधीन होकर न्याय एवं उत्तरदायित्व पर आधारित थी। परवर्ती कालखण्ड में भूमि व्यवस्था में धार्मिक एवं गैर&धार्मिक भूमि अनुदान] सामंती अधिकार] जागीरदारी एवं जमींदारी प्रथाएं पनपी। प्राचीन भारत के सामूहिक उत्तरदायित्व से उलट परतंत्र भारत में अब्राह्मिक शासकीय वैचारिकी की भेदभावपूर्ण भूमि नीतियां स्वार्थपूर्ण राजस्व संग्रहण के साथ निरंकुश सत्ता नियंत्रण का साधन बनी। ब्रिटिश शासन ने निजी ठेकेदारी से जोड़कर भूमि के क्रय&विक्रय को शासकीय मान्यता प्रदान की। इस शोध का प्रमुख उद्देश्य यह समझना है कि राज्य की भूमि नीतियों पर शासकों की धार्मिक विचारधारा का क्या प्रभाव रहा और ये आर्थिक समृद्धि एवं सामाजिक स्थायित्व में किस हद तक सहायक रही \ विशेषकर हिन्दू] इस्लामिक और ईसाईयत वैचारिकी की निरंतरता और विचलन से किस प्रकार भूमि व्यवस्थाएं परिवर्तित हुई \ स्वतंत्र भारत की धर्मनिरपेक्ष लोकतान्त्रिक व्यवस्था में सिद्धांततः भूमि नीतियाँ समता एवं सामाजिक न्याय पर आधारित होने के बावजूद इसमें आज भी क्रियान्वयन सम्बन्धी कई विसंगतियाँ विद्यमान हैं। प्राचीन ग्रंथों] ऐतिहासिक दस्तावेजों] औपनिवेशिक एवं संवैधानिक प्रावधानों का तुलनात्मक अध्ययन एवं विश्लेषण स्पष्ट करता है कि प्रशासकीय तंत्र एवं सामाजिक न्याय में सत्ता की वैचारिकी परिलक्षित हुई है। निष्कर्षतः प्राचीन और मध्यकालीन शासन में मौजूद सकारात्मक तत्वों के समावेशन से आधुनिक भूमि व्यवस्था को और अधिक प्रभावी बनाया जाना संभव है।

2-मुख्य बिंदु- अब्राह्मिक] स्थायी बंदोबस्त] पंथ निरपेक्ष] ख़राज] महलवाड़ी] रैयतवारी।

3-प्रस्तावना

भूमि केवल एक भौगोलिक या आर्थिक संसाधन नहीं बल्कि भारतीय समाज में सांस्कृतिक] धार्मिक और शासनिक पहचान की संवाहिका रही है। भारत में वैदिक काल के बाद ढाई हजार वर्षों का ज्ञात इतिहास ब्राह्मिक वैचारिकी के मौर्य] गुप्त] चोल] चालुक्य] राष्ट्रकूट] पल्लव] पाल एवं राजपूत आदि हिन्दू शासकों के साथ आठ सौ वर्षों के अब्राह्मिक विचारधारा के इस्लामिक आक्रांताओं एवं ईसाई औपनिवेशिक गुलामी का रहा है। प्राचीन काल से ही भारत की भूमि व्यवस्था में धर्म और राज्य दोनों की सशक्त उपस्थिति दिखाई देती है। भूमि संबंधों की दृष्टि से ब्राह्मिक व्यवस्था *सवै भूमि गोपाल की' की अवधारणा पर आधृत है। भारत का भूमि इतिहास एक बहुस्तरीय यात्रा है जिसमें विभिन्न धार्मिक विश्वासों और शासन पद्धतियों ने अपनी-अपनी वैचारिक दृष्टि के अनुरूप भूमि अधिकारों] स्वामित्व] कर&प्रणालियों और न्याय&प्रणालियों

को गढ़ा। कौटिल्य का अर्थशास्त्र जहाँ भूमि को राज्य की राजस्व प्रणाली का मूल आधार मानता है] वहीं इस्लामी शासन काल में शरीयत आधारित भू&व्यवस्था एक धार्मिक दायरे में संपत्ति के अधिकार को परिभाषित करती है। ब्रिटिश काल की संस्थागत भू&नीतियों ज़मींदारी] महलवाड़ी एवं रैयतवारी ने धार्मिक एवं प्रशासनिक दख़ल को और गहराया। स्वतंत्र भारत में संविधान ने भूमि व्यवस्था को पंथनिरपेक्ष आधार पर पुनर्गठित करने का प्रयास किया] परंतु धार्मिक संस्थानों की भूमि पर स्वामित्व] वक्फ बोर्ड और मंदिर न्यासों जैसी व्यवस्थाओं ने एक जटिल बहस को जन्म दिया है जहाँ धर्म] न्याय और लोकहित के बीच संतुलन बनाना चुनौतीपूर्ण रहा है।

ब्राहमिक वैचारिकी शासित राज्य ने भूमि को राज्य की संपत्ति माना और भूमि नीतियों में लोककल्याण को केंद्र में रखा। कौटिल्य भूमि को राज्य के नियंत्रण में रख कर&संग्रह के साथ भूमि को जनहित] न्याय और दायित्वाधीन वितरण का जरिया मानता है। भूमि के प्रति परंपरागत अधिकार] ग्राम्य स्वायत्तता और सामाजिक न्याय की अवधारणाएँ आजादी के पूर्व तक हिन्दू शासित राज्यों में भी देखी गई हैं। अब्राह्मिक परंपराएं एकेश्वरवाद में विश्वास करती हैं अर्थात् केवल एक ईश्वर] एक पवित्र पुस्तक और उसमें वर्णित तथ्य ही एकमात्र सत्य है] इसमें समीक्षा या सुधार की कोई गुंजाईश नहीं है। अब्राह्मिक आस्थाएं अपने मूल में स्वयं को ßएकमात्र सत्य मार्गß मानने के कारण अन्य आस्थाओं को या तो निम्नतर या सुधार की आवश्यकता वाली मानती हैं। ब्राह्मिक परंपराओं का बहुधार्मिक सह-अस्तित्व का भाव इन धर्मों में सीमित रहा है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से हिन्दू कालखण्ड की तुलना में मुस्लिम&ब्रिटिश शासन में अब्राह्मिक व्यवस्था की वैचारिकी में भूमि स्वामित्व से जन सामान्य को दूर रखा गया। इस व्यवस्था में जमींदारी या ठेकेदारी प्रथा को बढ़ावा देकर बिचौलियों के माध्यम से किसानों का शोषण करना शासकों का लक्ष्य रहा। उपनिवेशवाद ने अधिकतम भू&राजस्व हेतु भूमि प्रबंधन को इस हद तक बदल दिया कि अंततः भूमि निजी ठेकेदारी में चली गई और प्रकृति का उपहार भूमि क्रय-विक्रय की वस्तु बन गई।

सल्तनत और मुग़ल काल में भूमि सत्ता और सैन्य शक्ति के विस्तार का माध्यम बनी। भूमि को राजस्व और राजनीतिक अनुग्रह के स्रोत में परिवर्तित किया जिसमें किसानों की स्थिति अधीनस्थ की रही। ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन में भूमि को एक पूंजीगत संसाधन और राजस्व संग्रह के उपकरण के रूप में देखा गया। ब्रिटिश भू&बंदोबस्त प्रणालियों ने समाज को सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से विखंडित किया। भूमि शोषण का यह मॉडल स्वतंत्र भारत में भूमि सुधारों का आधार बना। स्वतंत्र भारत के संविधान ने भूमि को न्याय] समानता और पुनर्वितरण के सिद्धांतों से जोड़ा। व्यवहार में भूमि सुधार कार्यक्रम] अधिग्रहण कानून और भूमि उपयोग नीति अनेक संरचनात्मक एवं वैचारिक चुनौतियों का सामना कर रही है। मुख्य प्रश्न यह है कि कौटिल्य से वर्तमान तक शासन वैचारिकी ने भारत की भूमि व्यवस्था और नीतियों को क्या आकार दिया\ और क्या वर्तमान भूमि नीतियों और विवाद समाधान तंत्र में पूर्ववर्ती धार्मिक प्रभावों के अवशेष आज भी दिखाई देते हैं\

यह शोधपत्र भूमि व्यवस्थाओं की वैचारिक पृष्ठभूमि] नीति निर्माण और इसके सामाजिक प्रभावों का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए कौटिल्य के भूमि दर्शन] मध्यकालीन शरिया आधारित भूमि नीति] ब्रिटिश औपनिवेशिक राजस्व प्रणाली तथा स्वतंत्र भारत की संवैधानिक भूमि व्यवस्था को एक कालक्रमिक और वैचारिक अनुक्रम में परखता है। अब तक कौटिल्य से लेकर आधुनिक भारत तक धार्मिक वैचारिकी आधारित भूमि नीतियों का तुलनात्मक और समग्र अध्ययन व्यवस्थित रूप से नहीं हुआ है। यह अध्ययन भूमि नीति के अंतर्विषयों को समाहित करते हुए यह दर्शाने का प्रयास है कि भूमि की अवधारणा केवल आर्थिक नहीं बल्कि शासनिक वैचारिकी की अभिव्यक्ति है।

4-उद्देश्य

इस अध्ययन के मुख्य उद्देश्य हैं&

1-भारत की प्राचीन ब्राह्मिक परंपराओं के आलोक में कौटिल्य की भूमि अवधारणा एवं व्यवस्था का विश्लेषण करना] 2-इस्लामी एवं औपनिवेशिक शासन में भूमि नीतियों में आए बदलाव एवं संस्थागत हस्तक्षेपों के प्रभावों का मूल्यांकन करना] 3-यह स्पष्ट करना कि भूमि]

भौतिक संसाधन के साथ राज्य&नागरिक संबंधों की सत्ताधारित वैचारिक अभिव्यक्ति भी है] 4-भूमि नीति में धार्मिक शासनाधारित तथा धर्मनिरपेक्ष संविधानिक व्यवस्था की तुलनात्मक विवेचना कर भविष्य की नीतिगत अनुशंषाओं की ओर संकेत करना।

5-साहित्य समीक्षा एवं शोध प्राविधि

एल आर रंगराजन कृत पुस्तक ßकौटिल्य-द अर्थशास्त्रß के अनुसार राज्य में सम्पदा का संचय इसलिए संभव हो सका क्योंकि राज्य सभी संपत्ति का प्रमुख और अंतिम स्वामी था। आर-पी- कांगले ने ßद कौटिल्य अर्थशास्त्रß में स्पष्ट किया है कि भूमि केवल कर वसूली का साधन नहीं थी बल्कि राज्य के सामाजिक कर्तव्यों जैसे न्याय] पुनर्वितरण] दण्डनीति आदि से भी जुड़ी हुई थी। वाचस्पति गैरोला ßकौटिलीयम अर्थशास्त्रम~ß में कौटिल्य की निरंकुश नीति में प्रजातन्त्री विचारों का आश्चर्यमय समन्वय मानते हैं। मध्यकालीन इस्लामी ग्रंथों जैसे फतवा&ए&आलमगिरी में भूमि पर कर और धार्मिक कराधान की व्यवस्थाएँ विस्तार से मिलती हैं। इस दौरान भारतीय ग्रामीण स्वायत्तता और सामुदायिक नियंत्रण का ह्रास हुआ। यह दृष्टिकोण एकतरफा राजस्व केंद्रित था जिससे कृषकों में असुरक्षा और असमानता बढ़ी। आधुनिक इतिहासकारों ने मुगल भूमि व्यवस्था ज़ब्ती] इजारादारी] जागीरदारी और सल्तनत काल की खालसा-भूमि] वक्फ-भूमि आदि की व्यवस्था को केंद्रीकृत राजस्व तंत्र के रूप में देखा है। भूमि पर शाही स्वामित्व में कृषकों से उपज पर कर वसूला जाता था। सामाजिक न्याय की अपेक्षा प्रशासनिक नियंत्रण पर अधिक बल था। भूमि विवादों का समाधान मज़हबी क़ानूनों या सुल्तानी हुक्मनामों द्वारा किया जाता था। सोलहवीं सदी का अकबरकालीन शासकीय इतिहासकार अबुल फज़ल राजस्व को राजत्व का पारिश्रमिक बताता है जो राजा द्वारा अपनी प्रजा को सुरक्षा प्रदान करने के बदले की गई मांग थी न की अपने स्वामित्व वाली भूमि पर लगान। जेम्स ऍफ़ रिचर्ड्स ßमुग़ल एम्पायरß में सल्तनत और मुग़ल बादशाह की सर्वोच्चता वाले केंद्रीकृत शासन व्यवस्था में राज्य की भूमिका को सैन्य&राजस्व केंद्रित मानते हुए जागीर या इक्ता प्रणाली में भूमि के वितरण को शोषण की प्रवृत्ति में सहायक मानते हैं। सुरेंद्र नाथ गुप्त अपनी कृति ßसोने की चिड़िया और लुटेरे अंग्रेजß में उल्लेख करते हैं कि परंपरागत भूमि धारण एवं उपज आधारित मालगुजारी के बजाय ब्रिटिश भारत में पूर्व-निर्धारित मालगुजारी पद्धति से कृषकों का शोषण हुआ और भूधर कृषक स्वामी से करदाता एवं श्रमिक बना दिए गए। इतिहासकारों ने ब्रिटिश भूमि व्यवस्था को औपनिवेशिक शोषण की रीढ़ कहा है। ज़मींदारी] रैयतवाड़ी और महलवाड़ी व्यवस्थाओं ने भूमि को निजी संपत्ति में रूपांतरित किया और कर वसूली को किसान के जीवन से अधिक महत्वपूर्ण बना दिया।

शोध को प्राथमिक स्रोत अर्थशास्त्र] संविधान] विभिन्न अधिनियमों एवं द्वितीयक स्रोत पुस्तकें, शोध-पत्र, सरकारी रिपोर्ट] न्यायिक निर्णय की सहायता से वर्णनात्मक विश्लेषण] तुलनात्मक अध्ययन] सैद्धांतिक व्याख्या कर गुणात्मक एवं ऐतिहासिक&तुलनात्मक पद्धति से सम्पादित किया गया है।

6-परिणाम एवं विमर्श

6-1 वैदिक एवं कौटिल्य पूर्व कालखण्ड में भूमि की अवधारणा

वेदों में भूमि (पृथ्वी) को माता और मनुष्य को इसका पुत्र कहा है। भूमि सभी पदार्थों एवं प्राणियों को आश्रय प्रदान करती है। कृषि द्वारा अन्नादि की उत्पत्ति] खनिज द्रव्यों की प्राप्ति] वृक्ष, भवन निर्माण सामग्री आदि की प्राप्ति भूमि से होती है।[1] भूमि का अत्यधिक दोहन भूमि के प्रति हिंसा मानी गई है। कृषि और पशुपालन का सम्बन्ध ग्रामीण क्षेत्र से जबकि उद्योग एवं वाणिज्य&व्यापार] क्रय&विक्रय अथवा आयात&निर्यात का सम्बन्ध नगरों से था। कृषि] पशुपालन] व्यापार और उद्योग धंधों में भूमि का महत्व स्पष्ट है। ग्रामीणों के लिए नदी] तालाब] कुँए] बावड़ी आदि जलस्रोत की तरह ही कृषि आधारित अर्थव्यवस्था में पशुओं के योगदान को देखते हुए ग्राम्य और आरण्य पशुओं के रहने हेतु सुरक्षित विश्राम स्थली और पशुचारण हेतु पर्याप्त पशुचारण या गोचर¼गव्यूति½ भूमि या ओरण भूमि भी थी। इन भूमियों की सुरक्षा] स्वछता व व्यवस्था का दायित्व ग्रामवासियों का था। उसे नष्ट करना दण्डनीय अपराध था।[2] भूमि स्वामित्व की अवधारणा में भूमि पर कब्जे]

उपयोग&उपभोग के अधिकार कर देयता और अंतरण के अधिकार शामिल हैं। प्राचीन भारत में भूमि प्रकृति का उपहार थी। समाज में भूमि का स्वामित्व सामूहिक और सामाजिक उत्तरदायित्व से जुड़ा था। ßसबै भूमि गोपाल कीß संकल्पना में भूमि किसानों और पशुपालकों के स्वामित्व और अधिकार की थी। वैदिक एवं उत्तरवैदिक काल में ßभूमिपतिß राजा का दायित्व भूमि के संरक्षण एवं उसके न्यायोचित पुनर्वितरण का था। भारतीय सनातन परंपरा में भूमि शामलाती सहस्वामित्व की संपत्ति थी। इसलिए भूमि की खरीद&फरोख्त और अनुदान के प्रश्न पर भौंहें तन जाती थी। मनु के अनुसार भूमि उसकी होती है जो उसे सबसे पहले साफ करता है।[3] इससे स्पष्ट है कि भूमि का स्वत्वाधिकार उसे जोतने वाले श्रमिक से जुड़ा था। भारतीय परंपरा में भूमि सहनशीलता] धैर्य एवं जीव-जगत के पोषण की देवी है। ßवसुधैव कुटुंबकम~ß की भावना में भूमि के सामुदायिक उत्तरदायित्व] कर्म या दायित्व आधारित उपयोग] वृक्षारोपण] जल और भूमि संरक्षण पुण्य कर्म हैं। ऋग्वैदिक काल से उत्तर वैदिक संक्रमण के दौरान कृषि और आवासीय उद्देश्यों के लिए भूमि का उपयोग प्रारम्भ हुआ। कुल-कबीले के आंतरिक और बाह्य संघर्षों और चुनौतियों से सुरक्षा के लिए नियुक्त वरिष्ठ] शक्तिशाली और बुद्धिमान व्यक्ति ßराजन" को कुल के सदस्यों से बलि ¼टैक्स½ प्राप्त होती थी। प्रारंभिक ऋग्वैदिक काल की भूमि सामूहिक संपत्ति एवं खेती के सीमित विकास से भूमि विवाद कम थे। तत्पश्चात उत्तरवैदिक काल में कृषि के प्रसार के साथ खेतों के सीमा विवाद] जल उपयोग और पशु-चारण अधिकारों से संबंधित संघर्ष देखे गए। विवाद निवारण हेतु सभा और समिति संस्थाएं थी। कुलपुरोहित निर्णायक की भूमिका में थे। दण्ड प्रायः प्रायश्चित] धनदण्ड या सामाजिक बहिष्कार के रूप में थे । महाजनपद काल में कृषि भूमि का महत्व अत्यधिक बढा। राजा को भूमि का सर्वोच्च स्वामी माना जाने लगा। भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व और राज्य का कराधिकार स्थापित हुआ। भूमि सम्बन्धी विवादों में मुख्य रूप से कर अदायगी] सीमांकन व स्वामित्व संबंधी संघर्ष] राजकीय अनुदानित भूमि पर विवाद शामिल थे। ये विवाद शुरुआती स्तर पर ग्रामसभा और जनपद सभा ग्राम प्रमुख ¼ग्रामणी) और पुरोहित की मध्यस्थता में धर्मसूत्रों और स्मृतियों के अनुसार निपटाए जाते थे। अंतिम निर्णय हेतु राजा या अधिकृत राजकर्मिकों के न्यायालय में अपील के प्रावधान थे। भूमि सीमांकन में पत्थर] वृक्ष] जलस्रोत आदि प्राकृतिक स्थायी चिह्न प्रमाण थे। कालांतर में प्रारंभिक मौर्य-पूर्व काल में शहरीकरण और व्यापारिक विकास के साथ भूमि कर&व्यवस्था जटिल हुई। भूमि राज्य के राजस्व का मुख्य स्रोत बना। सिंचाई और जल&वितरण] कृषकों और कर&संग्रहकर्ताओं के मध्य] उत्तराधिकार और भूमि की खरीद&बिक्री के विवाद सामने आए। न्याय प्रणाली पूर्ववत बनी रही। भूमि अनुदान पत्र] शिलालेख आदि लिखित प्रमाण का महत्व बढ़ा। दासत्व और भूमि जब्ती भी दण्ड विधान में सम्मिलित हुए। कौटिल्य-पूर्व काल में भूमि विवाद अपेक्षाकृत स्थानीय स्तर पर निपटाए जाते थे। धर्मशास्त्र] लोक प्रथाओं और ग्रामसभा पर आधारित न्याय व्यवस्था त्वरित थी परंतु इसमें मानकीकरण का अभाव था। कालान्तर में यह तंत्र धीरे-धीरे केंद्रीकृत होता गया और राजा सर्वोच्च निर्णायक भूमिका में स्थापित हुआ। इससे आगे चलकर भूमि व्यवस्था में कौटिल्य की दण्डनीति और विधिक तंत्र की नींव तैयार हुई।

6-2 कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भूमि दृष्टिकोण

हिन्दू राजनीति की दृष्टि से राज्य एक ऐसी पुनीत थाती है जो राजा को इसलिए सौंपी जाती है कि वह प्रजा की सुख&समृद्धि और कल्याण के लिए सतत यत्नशील बना रहे।[4] इसी अनुरूप कौटिल्यीय शासन का मूल मन्त्र ßप्रजा सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितं। नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितंß अर्थात् प्रजा की खुशी में राजा की खुशी और प्रजा के कल्याण में ही राजा का कल्याण] रहा। कौटिल्य के अनुसार भूमि राज्य का सबसे महत्वपूर्ण संसाधन और राज्य की धुरी है। भूमि राज्य के उत्तरदायित्व युक्त नियंत्रण में थी। कौटिल्य के भूमि प्रशासन का उद्देश्य केवल कर संग्रह नहीं बल्कि निष्पक्षता, लोकहित] न्याय और भूमि के पुनर्वितरण पर आधारित था। कौटिल्य की भूमि दृष्टि न्यायसंगत] संरक्षकात्मक और राज्यहितैषी थी।

कौटिलीय अर्थशास्त्र के अनुसार राज्य संचालन के प्रशासनिक व्ययों की पूर्ति हेतु थोड़ी बहुत भूमि को राज्य राजा के नियंत्रण में रख शेष भूमि ग्राम समुदाय के व्यवस्थापन के अधीन थी। कौटिल्यीय अर्थशास्त्र में भूमि वितरण] मापन] अभिलेख और विवाद समाधान की संपूर्ण प्रणाली स्पष्ट रूप से वर्णित है। इसमें कृषि योग्य भूमि, चरागाह] वन्य भूमि] जलाशय] खनन क्षेत्र] बसावट योग्य अक्षत भूमि और बंजड़ भूमियों के उपयोग का उल्लेख है। भू-उपयोगिता के आधार पर पॉच प्रकार की भूमियों में कृषि योग्य भूमि के अंतर्गत मुख्य रूप से शासकीय] गैर&शासकीय और चरागाह भूमि शामिल थी। दूसरे भूमि वर्ग वनों के अंतर्गत उत्पादक और गैर-उत्पादक वन श्रेणियां थी। वन्यजीव अभ्यारण्य अनुत्पादक जंगलात भूमि में थे। जलप्लावित भूमि क्षेत्र में तालाब की अधिकांश सम्पत्तियां राज्य के स्वामित्व में थी और कुछ तालाबों पर गैर राजकीय मालिकाना हक़ भी था। भूमि का चौथा प्रवर्ग स्थलीय और जल खनन क्षेत्र पर पूरी तरह राज्य का स्वामित्व था। खनन संचालन का कार्य मुख्य रूप से राज्य के द्वारा किया जाता था फिर भी कई खदानें पट्टे पर प्राइवेट संचालकों को दी हुई थीं।[5] राज्य के राजस्व का मुख्य स्रोत कृषि उत्पादों पर आधारित कर था। शासकीय कृषि भूमि से ßसीताß और गैर&शासकीय भूमि से ßभागß भूमि कर प्राप्त होता था। युद्वकाल में भी कृषि भूमि] खेती एवं फसल को नष्ट नहीं करते थे] कृषक अवध्य था] कृषकों को सैन्य तथा अन्य राजकीय कार्यों से मुक्त रखा गया था। सीमावर्ती क्षेत्रों की भूमि पर राज्य का सीधा नियंत्रण आवश्यक माना गया। भूमि का उपयोग कृषि के अलावा आवास] गोचर] वन] उद्योग ¼शिल्प½ और व्यापारिक मार्ग आदि के रूप में होता था। कौटिल्यीय भूमि नीति] न्याय एवं दण्डविधान का प्रजा में राज्य के प्रति विश्वास था जिससे प्रजा ने खुशी खुशी राज्य को कर प्रदान कर राजकोष में वृद्धि की। कौटिल्य भूमि विषयक विवादों को सामाजिक शांति और राज्य की अर्थव्यवस्था में अवरोधक मानते हैं। इसलिए कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भूमि संबंधी झगड़ों के समाधान हेतु विस्तृत एवं सुव्यवस्थित न्यायिक एवं प्रशासनिक तंत्र के साथ एक स्पष्ट नियमावली] दाण्डिक प्रावधान और साक्ष्य व्यवस्था थी। सीमाओं के विवाद] स्वामित्व और कब्जे के विवाद एवं शासकीय] शामलाती एवं लोकोपयोगी भूमियों पर अतिक्रमण के मामले स्थानीय साक्ष्य] सीमा चिह्न और गुप्तचरों के माध्यम से स्थानीय स्तर या फिर धर्मस्थीय न्यायालय द्वारा सुलझाए जाते थे। अपराध की गंभीरता के अनुसार दण्ड के प्रावधान थे। कठोर मौद्रिक एवं शारीरिक दण्ड के द्वारा विवादों पर नियंत्रण बना हुआ था जिसकी पुष्टि मैगस्थनीज ने अपने यात्रा वृतांत में की गई है।[6] घर] खेत] बाग] पुल और बांध] तालाब और जलाशय को वास्तु के रूप जाना जाता था। वास्तु सम्बंधी विवादों पर फैसला लेना गांव के मुखियाओं का दायित्व था। कौटिल्य का अर्थशास्त्र संसाधनों की अभिवृद्धि एवं जनकल्याण के संतुलन पर जोर देता है ताकि प्रजा सुखी और समृद्ध हो सके। कराधान का उद्देश्य राज्य पोषण के साथ-साथ कृषकों की सुरक्षा भी था। लघु प्रकृति के विवादों को सुलझाने के लिए ग्राम] श्रेणी और संघ न्यायालयों की व्यवस्था थी। न्यायाधीशों ¼धर्मस्थ½ और मजिस्ट्रेट्स ¼प्रदेष्ट्रा½ को तेरह लोक उपद्रवी अर्थात गूढ़ाजीवियों ¼अवैध उपायों से जीविका अर्जन करने वाले½ में सम्मिलित कर दण्डविधान के दायरे में रखा गया था।[7]

6-3 कौटिल्योत्तर कालखंड में भूमि नीति

शक्तिशाली मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद मध्य युग की शुरुआत तक ऐसा कोई साम्राज्य भारतवर्ष में नहीं रहा जो राजस्व&प्रशासनिक व्यवस्था को मजबूती और स्थायित्व प्रदान कर सके। कौटिल्य के बाद भूमि पर राज्य का पूर्ण अधिकार था। ब्राह्मणों व धार्मिक संस्थानों को कर&मुक्त अग्रहारा भूमि दान परंपरा प्रारंभ हुई। किसानों से भूमिकर वसूला जाता था। दान प्रथा के साथ कुषाण काल में भूमि व्यवस्था स्थानीय जमींदारों और ग्राम समुदायों पर आधारित रही। गुप्त शासन में भूमि दान&ब्राह्मदेय] देवत्र] अग्रहारा व्यापक हुए। राज्य की भूमि का बड़ा हिस्सा कर&मुक्त दान में जाने से किसानों पर बोझ बढ़ा। सामंतवादी प्रवृत्ति विकसित हुई। भूमि मापन] भू-अभिलेख] भूमिकर निर्धारण की प्रणाली विकसित हुई। गुप्त काल में ब्राह्मणों को करमुक्त और उत्तराधिकार योग्य भूदान से राजस्व से मुक्त क्षेत्रों की संख्या बढ़ी। भूमि अनुदान बढ़ने से धार्मिक संस्थाओं और जमींदारों के बीच विवाद बढ़ा। न्याय निर्णयन राजसभा] ग्राम सभा और कभी&कभी शिलालेखों में उल्लिखित पंचों द्वारा किया जाता था। अग्रहार भूमि दान को सामंतवाद के उदय का प्रमुख कारण माना गया है। प्रारम्भिक गुप्तकाल में बिना सम्राट की अनुमति

सामंतों को भूमिदान के अधिकार नहीं थे परन्तु बाद में ब्रह्मदेय भूमि पर ब्राह्मणों के भूमिपति बनने और प्रमुख कार्मिकों को वेतन के बजाय भूमि अनुदान और इन पदों के उत्तराधिकार के अधिकार मिलने से ये भी सामंतों की तरह स्वतंत्र हुए। सत्ता के विकेन्द्रीकरण की इस प्रवृत्ति से भूमि प्रणाली और अंततः परम्परागत सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था प्रभावित हुई।[8]

हर्षवर्धन के शासन में सामंतों और धार्मिक संस्थानों को करमुक्त भूमि दान और कृषकों से कर सामंत वसूलते थे। भूमि के बड़े हिस्से सामंतों के नियंत्रण में चले गए। गुप्तोत्तर काल और विशेषकर हर्ष के बाद धार्मिक भूमि अनुदानों के अतिरिक्त गैर&धार्मिक भूमि अनुदान यथा राजा के मंत्रियों और ऊंचे अधिकारियों को वेतन और पुरस्कार के रूप में भूमि की जागीरें देने में बढोत्तरी हुई। राजपूत काल में भूमि व्यवस्था पूरी तरह सामंतवादी ढांचे पर आधारित हो गई। राजा अपने अधीनस्थ सामंतों&ठाकुर] जमींदार को भूमि देकर उनकी वफादारी और सैनिक सेवा सुनिश्चित करता था। कृषक वास्तविक उत्पादक थे जो सामंतों को कर और बेगार देते थे। मंदिरों को भूमि दान व्यापक हुआ जिससे धार्मिक संस्थान भूमि स्वामी बन गए। तात्कालिक परिस्थितियों के कारण प्राचीन सामुदायिक कृषि-भूमि स्वामित्व के पैटर्न में आए बदलाव के कारण किसानों और राज्य के मध्य बिचौलियों और जागीरदारी प्रथा का उदय इस कालखण्ड का प्रमुख लक्षण रहा है। पुरोहितों को भूमि दान देने की परम्परा इस काल में भी जारी रही। इसके तहत शासन द्वारा सनद् के द्वारा जमीन देने की प्रथा चली। भारतीय उपमहाद्वीप में आठवीं से बारहवीं सदी के मध्य हुए कृषि विस्तार की शुरुआत ब्रह्मदेय के रूप में ब्राह्मणों को उपहार में प्राप्त गांव या भूमि और राज्य को देय भूमि कर मुक्त अग्रहार बस्तियां थी। राजकीय अधिकारियों को भी वेतन की जगह भूमि अनुदान से इसमें गति आई थी। कालान्तर में शासक की बढ़ती शक्तियों से भूमि स्वामित्व में परिवर्तन हुआ और ßसबै भूमि भूपालß की अवधारणा सामने आई थी।[9] इसमें राजाओं को भूमि के धार्मिक और गैर&धार्मिक अनुदान के साथ राज्य को मिलने वाले भू-राजस्व में छूट मिली। ऐसे मध्यवर्ती सामंतों और जागीरदारों को अधीनस्थ क्षेत्र के प्रशासनिक और न्यायिक अधिकार भी प्रदत्त थे जो किसानों और ग्रामीणों के शोषण का कारण बने। सल्तनत और मुग़ल काल में इस व्यवस्था की तीव्रता और बढ़ी।

6-4 मध्यकालीन भारत में भूमि पर इस्लामी दृष्टिकोण

भारत में सहस्त्रों वर्षों से सीधे ही या अधीन कर यहाँ की धन-संपदा को लूटने के उद्देश्य से निरंतर आक्रमण हुए। इनमें से इस्लामिक आक्रांताओं एवं अंग्रेजों ने स्थायी रूप से सैंकड़ों वर्षों तक यहाँ शासन किया। इस्लामी मान्यता के अनुसार भूमि अल्लाह की संपत्ति है और शासक केवल उसका प्रतिनिधि है। इस्लामी शासकों द्वारा इस्लामी धार्मिक अवधारणाओं एवं शरिया कानून के आधार पर भूमि पर नियंत्रण कर परंपरागत व्यवस्था में बदलाव किए। इस्लामी परंपरा दुनिया को दो भागों] इस्लामी शासन वाले ßदार&उल&इस्लामß और गैर&इस्लामी शासन की भूमि ßदार&उल&हरबß में बांटता है। इस्लामिक शास्त्रीय कानूनों के मुताबिक मुस्लिम शासक द्वारा विजित एवं स्थापित राज्य में गैर&मुस्लिमों की निजी संपत्ति पर ßवैयक्तिक संपत्ति संरक्षण का सिद्धांतß लागू नहीं होता है।[10] इस्लामी शासन में रहने वाले और इस्लामी सत्ता को स्वीकार करने वाले गैर&मुसलमान ßज़िम्मीß को सुरक्षा] भूमि उपयोग और धार्मिक स्वतंत्रता के बदले धार्मिक कर **जजिया** और भूमि राजस्व **ख़राज** अदा करना होता था। ख़राज] मुसलमानों से लिए जाने वाले भूमि कर **उशर** से अपेक्षाकृत अधिक और कठोर था।[11] मुसलमानों के लिए धार्मिक@सार्वजनिक हित के लिए **वक्फ़ भूमि** आरक्षित थी जबकि जिम्मियों को राज्य की विशेष अनुमति से धर्मस्थल एवं अन्त्येष्टि स्थल की भूमि मिल सकती थी। भूमि पर शरिया आधारित जागीरदारी और इक्ता प्रणाली लागू की गई। राजा भूमि का स्वामी होने से सैन्य सेवक को उनके वेतन के बराबर कुछ भूमि **जागीर** दी जाती थी। कृषकों को केवल उपयोग का अधिकार प्राप्त था। सामंतों की भूमि-हिन्दू राजा] सामंत और जागीरदारों को प्रतिवर्ष निश्चित कर देयता पर दी जाती थी। इक्तादारी व्यवस्था में भूमि पर नियंत्रण रख सैनिकों और अधिकारियों को सेवा के बदले अस्थायी अधिकार दिए गए थे। इक़्तेदार को केवल कर संग्रह का अधिकार प्राप्त होता था। यह व्यवस्था सैन्य सुदृढ़ता और वफादारी के अधीन थी। अधिकारी अपना वेतन भूमि से उत्पन्न राजस्व से लेते थे और शेष को केंद्र को वापस करते थे। शासक द्वारा समय&समय पर इक्ताओं का हस्तांतरण किया जाता था जिससे कोई भी अधिकारी क्षेत्र विशेष पर स्वायत्तता न पा सके। **खालसा** भूमि को शासकीय राजस्व

के लिए प्रत्यक्ष नियंत्रण में रखा गया था। सीधे केंद्र के अधीन इन भूमियों से प्राप्त आय से शाही खर्च चलते थे। भूमि विवादों का निवारण इस्लामी न्यायाधीश द्वारा शरिया सिद्धांतों के आधार पर किया जाता था। ब्राह्मणों एवं हिन्दू परंपरागत कानूनों की अवहेलना प्रचलित रही। मुसलमानों को इस्लामी कानून के अनुसार न्याय मिलता] जबकि ग़ैर&मुसलमानों के लिए धर्मनिरपेक्ष या सीमित पारंपरिक व्यवस्था रह गई। इस प्रक्रिया में किसानों पर क्रूर और दमनात्मक तरीकों से कार्यवाही की जाती थी। इससे किसानों का खेती से अलगाव और फसल उत्पादन में अरुचि उत्पन्न हुई जिसके परिणामस्वरुप फसल उत्पादन प्रभावित हुआ। मुगल सम्राट समस्त भूमि के अधिकार का धारक था एवं कृषि भूमि पर निजी स्वामित्व मौजूद नहीं था] जिसकी पुष्टि मुगलकालीन भारत में रहे फ्रांसीसी यात्री इतिहासकार फ्रांस्वा बर्नियर ने भी की है। जागीरदार] गवर्नर्स और राजस्व ठेकेदारों का किसान] व्यापारी और कारीगरों के प्रति निर्दयी व्यवहार विशेष रूप से राजधानी और शहर&कस्बों से दूरस्थ इलाकों में ज्यादा था।[12] मुग़ल काल में क़ाज़ियों और फौजदारों के माध्यम से निर्णय होते थे जिनमें व्यक्तिगत निर्णय की गुंजाइश अधिक थी। मुगलकालीन अभिजात्य या उच्च कुलीन वर्ग जमींदार या भूमि स्वामी नहीं थे परन्तु उन्हें क्षेत्र विशेष जागीर से राजस्व एकत्रित करने के अधिकार दिए हुए थे। जागीर से प्राप्त आय का एक हिस्सा खुद के गुजारे के लिए और शेष शाही खजाने और सैन्य खर्चों में खर्च होता था। इस कुलीन वर्ग को वंशानुगत अधिकार सामान्यतः नहीं थे। यह इस्लामिक प्रथा अरब की खानाबदोश सामाजिक प्रथाओं से प्राप्त हुई थी। मुगलकाल में सैन्य अधिकारियों और अभिजात्य वर्ग ने भूमि सुधारों पर कोई ध्यान नहीं दिया। बहुविवाह] नौकर और गुलामों में होने वाले खर्चों] युद्ध लड़ने हेतु धन की आवश्यकता के कारण धन का केन्द्रीकरण एवं आर्थिक असमानता में वृद्धि और अर्थव्यवस्था कमजोर हुई। मुग़ल साम्राज्य में 1% शासक] मनसबदार] नबावों] जमीदारों की 15%] 17% शहरी व्यापारियों] सैनिकों] उद्यमियों की आय में हिस्सेदारी 37% थी। 82% ग्रामीण और ट्राइबल का अर्थव्यवस्था का हिस्सा थे परन्तु आय में उनकी हिस्सेदारी 48% ही थी।[13] शाहजहां के समय राज्य के सालाना राजस्व का 36-5% हिस्सा अडसठ शहजादों और अमीरों में बंटता था और 25% राजस्व भाग में 587 राजस्व अधिकारी और मनसबदार वर्ग शामिल थे। इस प्रकार कुल राजस्व में से 62% हिस्सा हजार से भी कम लोगों के पास था। पहली सदी में भारत के कुल घरेलू उत्पाद की विश्व की जी-डी-पी में 33% हिस्सेदारी थी जो मुग़ल कालावधि ¼1526&1858½ के दौरान घटकर 25-11% रह गई।

6-5 ईसाई धर्म और औपनिवेशिक भूमि नीतियाँ

ईसाइयताधारित धार्मिक और कानूनी सिद्धांत गैर&ईसाई भूमि पर ईश्वर प्रदत्त नियंत्रण मानता है। इसलिए उपनिवेशवाद के आधार पर गैर&विश्वासियों को अधीनस्थ बना कर उनकी भूमि पर पूर्ण दावा करता है। यूरोपीय ईसाई शक्तियाँ भूमि पर दैवी अधिकार ßडॉक्ट्रिन ऑफ डिस्कवरीß की अवधारणा के अंतर्गत गैर&ईसाई क्षेत्रों को ßअखोजी भूमिß (terra nullius) को मानकर उस पर कब्जे को धर्मसंगत मानती हैं। चर्च और मिशनरी संस्थाओं को दी गई भूमि ने ईसाई धर्म के प्रसार में भूमि को राजनीतिक उपकरण बना दिया। ईसाई मिशनरियों को भूमि दी गई ताकि वे स्कूल, अस्पताल और चर्च बना सकें। इन मिशनरियों को जमीन का पट्टा सीधे ब्रिटिश सरकार से मिला। इस दौरान आर्य समाज] सनातन धर्म सभा आदि संस्थाएं परंपरागत भूमि अधिकारों और धार्मिक संपत्तियों की रक्षा के लिए सक्रिय हुई। इसमें मुस्लिम और हिन्दू दोनों समुदायों में अपनी पारंपरिक धार्मिक ज़मीनों वक्फ और ब्रह्मदेय भूमि पर पुनः दावा किया। आदिवासियों की जिन भूमि क्षेत्रों के औपचारिक दस्तावेज़ नहीं थे उन्हें बंजर घोषित कर राज्यसात किया गया।[14] आदिवासी समुदायों को मिशन स्कूलों और चिकित्सा केंद्रों के माध्यम से ईसाई धर्म की ओर आकर्षित किया गया और उनके भूमि अधिकारों को चर्च से जोड़ दिया गया। ßश्वेत व्यक्ति का बोझß "White Man's Burden" सिद्धांत के अनुसार श्वेत यूरोपीयन स्वयं को सभ्य मानते थे और उनका मानना था कि वे भारतीय कृषकों की स्थिति सुधारने और आधुनिक भूमि व्यवस्था लाने के लिए सुधार कर रहे हैं जबकि वास्तविक उद्देश्य राजस्व अधिकतम करना और कृषि पर औपनिवेशिक नियंत्रण था। इसके तहत अंग्रेजों ने भारत की परंपरागत भूमि स्वामित्व और सामुदायिक प्रणाली को आधुनिकता की आड़ में विघटित किया। औपनिवेशिक आर्थिक हित को साधने के लिए कृषकों, भूमि नीतियों एवं न्याय तंत्र को अपने अनुकूल बनाया। यह प्रभाव इनके न्यायिक निर्णयों में भी परिलक्षित होता है। ब्रिटिश इंडिया में भूमिधारण आधार पर पूर्व निर्धारित मालगुजारी तय की गई। इससे पूर्व भारत में उपज

आधारित मालगुजारी व्यवस्था रही जिसमें भूमि में फसल की उपज के अनुपात में सरकार की साझेदारी थी।[15] ब्रिटिश राज ने भूमि को पूंजीगत संसाधन मानते हुए उसे निजी संपत्ति के रूप में स्थापित कर दिया। पारंपरिक सामुदायिक भूमि संबंधों को तोड़कर अंग्रेजों ने अधिकाधिक भूमि कर वसूली हेतु अपनी सुविधानुसार ज़मींदारी] रैयतवाड़ी और महलवाड़ी भूमि पद्धतियां शुरू की थी। 1793 के इस्तमरारी या स्थायी भूमि-बंदोबस्त ने जमींदारों को भू-स्वामी बना दिया और परम्परागत भूमिधारी खेतिहरों को बेदखली योग्य पट्टेदार। यदि जमींदार स्थाई रूप से निश्चित कुल कर का 90% भाग सर्वोच्च मालिक सरकार को देने में असमर्थ रहते तो इन जमींदारों को भी हटाया जा सकता था।[16] उदार जमींदारों का स्थान नए जमींदारों ने लिया। इस प्रणाली में अनुपस्थित जमींदारी के साथ ही शिकमी प्रथा से बिचौलिए आए जिनके लाभांश का भार कृषकों पर पड़ा। वही रैयतवाड़ी प्रथा में शासन और कृषकों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित हुआ परन्तु नित नए बदलते और बढ़ते लगान से शासन स्वयं विराट जमींदार के रूप में था। महलवाड़ी पद्धति में गांव को कर&इकाई मानकर सामूहिक बंदोवस्त द्वारा भू&कर वसूला गया। रैयतवाड़ी पद्धति में राज्य के किसानों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध थे परन्तु अत्यधिक एवं अकाल के दौरान भी नियमित कराधान से विवाद और भूमि जब्ती से प्रत्यक्षतः किसानों को मालिकाना हक़ देने वाली यह भूमि पद्धति भी अहितकारी साबित हुई। इस कालखण्ड में भी शासकों की स्वार्थपूर्ति की हद तक प्राचीन भारत के भूमि प्रावधान लागू रहे थे।

ज़मींदारी] रैयतवाड़ी और महलवाड़ी व्यवस्थाओं ने पारंपरिक सामुदायिक भूमि संबंधों को तोड़ दिया। भूमि कर वसूली का मुख्य स्रोत बन गई और किसान कर्ज और बेदखली की दशा में फंस गए। स्थायी बंदोबस्त, रैयतवाड़ी और महलवाड़ी जैसी भू&पद्धतियों से किसान भूमि से भावनात्मक और अधिकारिक रूप से अलग हुए। खेतिहरों को भूमि स्वामित्व से वंचित किया गया] असहनीय मालगुजारी एवं कर अदायगी नहीं करने पर भूमि की नीलामी की गई। बड़े जमींदारों और प्रभुत्वशाली वर्ग को अधिकार देने से निम्न जाति वर्ग के खेतिहर उनके टेनेंट्स हो गए।[17] सम्पत्ति के कानूनी अधिकार देने से इन भूमियों को गिरवी रखना आसान हुआ और साहूकारी प्रथा की शुरुआत हुई। भारत में ब्रिटिश शासन के अंतिम चरण में श्रम बल और उनकी आय की दृष्टि से भारी असमानता देखने को मिलती है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में योगदान करने वाले 75% भूमिहीन श्रमिक] ग्रामीण दस्तकारों] बंटाईदारों] भूमिहीन कृषक] छोटे जमींदार और साहूकार की आय 54%] नगरीय अर्थव्यवस्था के 18% श्रम बल में शामिल ब्रिटिश अधिकारी] बागान मालिकों] व्यापारियों आदि की आय 44% तथा जनजातीय अर्थव्यवस्था के 7% श्रम बल हिस्सेदारों की मात्र 2% आय थी। इसमें से भी 0-005% ब्रिटिश अधिकारी] बागान मालिक आदि की आय 5% थी] वहीं 0-95% स्थानीय राजा] बड़े जमींदार और जागीरदारों] पूंजीपतियों के पास 9% आय हिस्से में आती थी। राजसी और सैन्य खर्चों की पूर्ति आम जनता से कर वसूल कर होती थी। सन 1771 में खेतिहर की जमीन का औसत 40 एकड़ था जो 1915 में गिरकर 7 एकड़ पर आ गया। पहली सदी में भारत के कुल घरेलू उत्पाद की विश्व की जी-डी-पी में 33% हिस्सेदारी जो मुग़ल कालावधि के दौरान घटकर 25-11% थी] 1950 में यह 3% में पर आ गई।[18] ब्रिटेन में कृषक की हैसियत एक श्रमिक से अधिक नहीं थी जबकि ब्रिटिश पूर्व भारत में मुग़ल काल में भी कोई शक्ति शासक या जमींदार कृषक को खेतों पर उसके स्वामित्व से वंचित नहीं कर सकता था। मुगल व्यवस्था में आनुषंगिक उत्पीड़न होने पर भी ज़मीन के स्वामित्व का खतरा कम था जबकि ब्रिटिश व्यवस्था में कृषि-देयता न देने पर ज़मीन जब्त हो जाने का जोखिम था। इसी दमन] शोषण और भेदभाव पूर्ण रवैये ने आजादी की पृष्ठभूमि तैयार की।

6-6 स्वतंत्र भारत में धर्मनिरपेक्ष संविधान] भूमि नीतियां और न्याय प्रणाली

संविधान निर्माताओं ने ब्रिटिश उपनिवेशवाद द्वारा उत्पन्न भूमि असमानताओं को दूर करने तथा धार्मिक] सामाजिक और आर्थिक न्याय की स्थापना के उद्देश्य से भूमि सुधार की दिशा में कई पहल कीं।[19]1947 के बाद भारत ने भूमि नीति को पंथनिरपेक्षता और सामाजिक न्याय के आधार पर पुनर्गठित किया। स्वतंत्र भारत का संविधान भूमि को सामाजिक न्याय] पुनर्वितरण और समता के उपकरण के रूप में पुनर्परिभाषित करता है। अन्यायपूर्ण व्यवस्था को मिटाने के लिए भूमि सुधार कार्यक्रम शुरू किए गए। अनुसूचित जातियों] जनजातियों और किसानों के

अधिकारों की बहाली की दृष्टि से भूमि सुधार] जोत की सीमा] पुनर्वितरण एवं वैधानिक सुरक्षा की अवधारणाएं सामने आईं। भूमि सुधारों के अंतर्गत जमींदार उन्मूलन के तहत जमींदारी प्रथा ख़त्म कर किसानों को सीधे अधिकार दिए गए। सीलिंग कानून से भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारित कर अतिरिक्त भूमि को भूमिहीनों में वितरित करने की नीति अपनाई गई। यह वितरण धर्म से ऊपर सामाजिक-आर्थिक समानता के सिद्धांत पर आधारित था। संघीय ढाँचे के तहत भारतीय संविधान में वर्णित राज्य सूची के अनुसार अधिकांश भूमि विषयक अधिकार राज्य सरकारों को प्रदत्त किए हुए हैं जो भूमि विधियां और नीतियां बनाने हेतु अधिकृत है, वहीं सम्पत्ति का अर्जन और अधिग्रहण विषयों को समवर्ती सूची में रखा हुआ है। इसी अनुरूप भूमि का प्रबंधन किया जाता है। संविधान के अनुच्छेद 31क ¼2½¼क½ एवं 31क ¼2½ ¼ख½ में क्रमशः भूमि एवं उस पर अधिकारों संपदा के अंतर्गत व्यापक अर्थ में परिभाषित कर कृषि भूमि] अनुदानित भूमि] चरागाह] वन भूमि] बंजड़ भूमि और कृषक] कृषि श्रमिक और ग्रामीण कारीगरों के अधिभोग के भवन और संरचनाएं शामिल हैं। विभिन्न केंद्रीय और राज्यों के कानूनों में भूमि लगभग इसी अनुरूप परिभाषित है। संविधान भूमि को सामाजिक न्याय] आर्थिक समानता और पुनर्वितरण के औजार के रूप में परिभाषित करता है। अनुच्छेद 14 भूमि स्वामित्व एवं वितरण में भेदभाव निषिद्ध करता है। अनुच्छेद 15¼1½ में भूमि अधिकारों में धार्मिक तटस्थता है। अनुच्छेद 39¼b½ एवं ¼c½ समान संपत्ति वितरण और आर्थिक व्यवस्था में न्याय सुनिश्चित करती है। अनुच्छेद 25&28 धर्म की स्वतंत्रता, धार्मिक संस्थानों को राज्य से पृथक~ रखने की भावना है। अनुच्छेद 26 के तहत ¼कानून के अधीन) धार्मिक संस्थाओं को संपत्ति रखने का अधिकार है।[20] परन्तु गुलामी के कालखण्ड में भूमि व्यवस्था में हुए सामाजिक एवं धार्मिक भेदभाव के दुष्परिणाम धीरे-धीरे सामने आ रहे हैं। कई स्थानों पर वक्फ भूमि पर अवैध कब्ज़े] सरकार द्वारा अधिग्रहण या गैर&मुस्लिम उपयोग को लेकर विवाद हुए है] केवल एक धर्म की संस्थाओं पर ही नियंत्रण को लेकर याचिकाएं दायर हुईं। स्वतंत्र भारत में भूमि को संविधान के माध्यम से लोक&कल्याणकारी संपत्ति के रूप में व्याख्यायित किया गया] किंतु क्रियान्वयन में पूंजीवादी प्रभाव अभी भी दृष्टिगोचर होता है। पंथनिरपेक्ष भारतीय संविधान में स्वतंत्र न्यायपालिका के बावजूद आज भी भूमि विवादों में धार्मिक ध्रुवीकरण एक बड़ी चुनौती है। रामजन्मभूमि निर्णय[21] के बाद कृष्ण जन्मभूमि] काशी विश्वनाथ और संभल के प्रकरण इसके प्रमुख उदाहरण हैं] जहाँ भूमि विवाद केवल संपत्ति का प्रश्न न होकर धार्मिक पहचान और आस्था से जुड़ा हुआ है। वक्फ भूमि को व्यवस्थित और पारदर्शी बनाने के लिए पारित वक़्फ़ संशोधन अधिनियम 2025 धार्मिक विरोधों के कारण संवैधानिक वैद्यता हेतु सुप्रीम कोर्ट में विचाराधीन है।[22] भारतीय संविधान भूमि को सामाजिक न्याय की कसौटी पर रखता है, जहाँ पुनर्वितरण] गरीबी उन्मूलन और वंचितों के अधिकारों का संरक्षण केंद्रीय बिंदु बनता है। बिना भेदभाव प्रधानमंत्री आवास योजना के तहत गरीब वंचित परिवारों को मकान और उत्तरप्रदेश में सरकारी जमीन से अवैध कब्जे हटाकर की गई कार्रवाई के बाद गरीबों के लिए फ्लैट आवंटन सरकार का एक उल्लेखनीय प्रयास रहा है। वर्तमान भारत में कृषि भूमियों पर न के बराबर भू-राजस्व है और भू-उपयोग परिवर्तन एवं गैर-कृषि भूमियों से अधिकाँश भू-कर प्राप्त होता है। भारतीय ब्राह्मिक परम्परा के समर्थन में पूर्व मुख्य न्यायाधीश डी वाई चंद्रचूड़ का 10 अक्टूबर] 2024 को भूटान के एक दीक्षांत समारोह में दिया गया वक्तव्य उल्लेखनीय है जिसमें उन्होंने कहा है कि क़ानून केवल विवादों के निपटारे तक सीमित नहीं है बल्कि ये सामाजिक परिवर्तन का प्रभावी साधन है। पश्चिमी देशों की मानवाधिकारों की व्यक्तिगत अधिकारों की परिभाषा भारतीय समाज के लिए उपयुक्त नहीं है। पारम्परिक सामुदायिक विवाद निवारण तंत्र को संविधान में उपलब्ध ग्राम पंचायत एवं ग्राम सभाओं के विचारों से जोड़ने की आवश्यकता है। इस हेतु नवीन राजनीतिक विचारधारा एवं प्रणालियों के साथ जोड़कर इसे संस्थागत स्वरुप प्रदान किया जाना है। संविधान के पंथनिरपेक्ष चरित्र के बावजूद भी संविधान में अल्पसंख्यकों को प्रदत्त विशेषाधिकार एवं अतीत के धार्मिक भूमि विवादों से संविधान और न्यायपालिका की राह आसान नहीं है।

7-निष्कर्ष

इस अध्ययन में वैदिक भारत सहित कौटिल्य से वर्तमान की भूमि नीतियों में शासकों की वैचारिकी तथा उसके समाज पर प्रभाव का अध्ययन एवं तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है। हिन्दू कालखण्ड में भूमियां सामुदायिक सहस्वामित्व की थी। शासक भूमि संसाधन का व्यवस्थापक और समाज का कस्टोडियन था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भूमि व्यवस्था राज्य&नियंत्रित] न्यायोन्मुखी और उत्पादन-केंद्रित थी। सम्पूर्ण हिन्दू शासकों ने कमोवेश इसी भूमि व्यवस्था को अपनाया। परवर्ती मुग़ल-अंग्रेज कालखण्ड की भू-प्रशासनिक नीतियों में विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव था। मध्यकालीन भारत में भूमि व्यवस्था में सामंती ढांचे] धार्मिक अनुदान और सैन्य&प्रशासनिक आवश्यकताओं का प्रभाव बढ़ा जिससे भूमि का नियंत्रण सीमित वर्गों के हाथ में केंद्रित हो गया। मुस्लिम किसानों को छूट या न्यून कर जबकि गैर-मुस्लिम किसानों से अधिक वसूली की ये कर&नीतियाँ इस्लाम की श्रेष्ठता को प्रतिष्ठित करने के साथ धार्मिक पक्षपात को भी दर्शाती हैं। ब्रिटिश औपनिवेशिक काल में भूमि को राजस्व&संग्रह का मात्र साधन मानकर स्थायी बंदोबस्त] महलवाडी और रैयतवाड़ी जैसी भूमि पद्धतियां लागू की। इन प्रणालियों में एकाधिक मध्यस्थों की उपस्थिति] मालगुजारी की अत्यधिक दर और वसूली के दमनात्मक तौर&तरीकों से किसान भयाक्रांत] परंपरागत स्वामित्व से वंचित और आर्थिक रूप से कमजोर हुआ। स्वतंत्रता के बाद जमींदारी उन्मूलन] सीलिंग कानून और भूमि के पुनर्वितरण जैसे भूमि सुधारों में राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी] क्रियान्वयन में ढिलाई और कानूनी खामियों से वांछित परिणाम नहीं मिले हैं। मर्यादित स्वतंत्रता एवँ कर्तव्य निर्वहन की बाध्यता हेतु कानूनों में प्राचीन भारत जैसी कठोर व्यवस्था की जरूरत महसूस की जा रही है। वर्तमान लोकतान्त्रिक व्यवस्था में भूमि सुधारों में प्राचीन कौटिल्यीय एवं मध्यवर्ती कालखंड के सकारात्मक पहलूओं की पुनर्स्थापना एवं पुनर्व्याख्या कर इन्हें शामिल करते हुए व्यावहारिक लोकहितैषी भूमि नीतियों का निर्माण करना है। यह शोध उपलब्ध ऐतिहासिक तथ्यों एवं सीमित अभिलेखीय साक्ष्यों पर आधारित हैं जिसमें अब्राह्मिक आस्थाओं इस्लाम और ईसाइयत मत का शास्त्रीय आधार लिया गया है। धर्म विशेष के शासकों के अपने व्यक्तित्व के कारण भी नीतियों में रही भिन्नताओं को आलेख में समाहित नहीं किया है। भू-नीतियों की समीक्षा संक्रमणकालीन अवधि को छोड़ते हुए क्षेत्रवार न कर समग्र भारत क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए की गई है।

सन्दर्भ सूची

1. अथर्ववेद भूमि सूक्त 12-1-6
2. वैदिक अर्थव्यवस्था, 2001] डॉ महावीर समानांतर प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ 69-
3. द्विवेदी] पण्डित गिरिजा प्रसाद] हिन्दी अनु0 नवल किशोर प्रेस] लखनऊ] मनुस्मृति] अध्याय 9 श्लोक 44- पृष्ठ 6-
4. गैरोला] वाचस्पति] 1984] कौटलीय अर्थशास्त्रम्] संस्कृत&हिन्दी pkSखम्बा प्रकाशन] तृतीय संस्करण] वाराणसी पृष्ठ 38-
5. रंगराजन] एल-आर-] 1992] कौटिल्य द अर्थशास्त्र] पेंगुइन बुक्स इण्डिया प्रा- नई दिल्ली] पृष्ठ 81-
6. बाशम] ए-एल] अद्भुत भारत] शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी] आगरा] पृष्ठ-80-
7. कांग्ले] आर-पी-]1965] द कौटिल्य अर्थशास्त्र पार्ट ।।।] स्टडी] मोतीदास बनारसीदास पब्लिशर्स] प्रालि दिल्ली] पृष्ठ 234-
8. झा] द्विजेन्द्र नारायण] श्रीमाली] कृष्ण मोहन] 2001] प्राचीन भारत का इतिहास] हिंदी माध्यम कार्यान्वयu निदेशालय] दिल्ली विश्वविद्यालय] पृष्ठ 291-
9. शर्मा] रामशरण] 2018] भारत का प्राचीन इतिहास] अनु- नवीन] देवशंकर एवं कुमार] धर्मराज] ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस नई दिल्ली]पृष्ठ 272-

10. इस्राइल जेडवीआई गिलट एंड अमल मोहम्मद जबारीन] द इफ़ेक्ट ऑफ़ मिलिटरी कनक्वेस्ट ओन प्राइवेट ओनरशिप इन जुईश एंड इस्लामिक लॉ] जर्नल ऑफ़ लॉ एंड रिलिजन 31 न 2 2016- 227&26] सेंटर फ़ॉर द स्टडी ऑफ़ लॉ एंड रिलिजन एट एमरॉय यूनिवर्सिटी.
11. Revenue and rural society: The impact of sultanate taxation on peasants and landowners Archana Kumari Sah International Journal of History 2022; 4(1): 120-123
12. फ्रांकोसिस बर्नियर] अनुवादक आर्चीबॉल्ड कांस्टेबल] 1891] द्वितीय संस्करण पुनरीक्षित विन्सेंट] स्मिथ] हम्फ्रे मिलफोर्ड ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी लन्दन 1916] ट्रेवल्स इन द मुग़ल एम्पायर] पृष्ठ 226-
13. मैडीसन, एंगस] 1971] क्लास स्ट्रक्चर एण्ड इकोनोमिक ग्रोथः इण्डिया एण्ड पाकिस्तान सिंस द मुगल] मोर्टन] न्यूयार्क- पृष्ठ 33-
14. Roots and Ramifications of a Colonial 'Construct': The Wastelands in Assam Gorky Chakraborty September 2012 INSTITUTE OF DEVELOPMENT STUDIES KOLKATA DD-27/D Salt Lake City, Sector - 1 Kolkata
15. सुरेंद्र नाथ गुप्त, सोने की चिड़िया और लुटेरे अंग्रेज, चतुर्थ संस्करण, 2023, विकास ओफ्फसे प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स भोपाल पृष्ठ 107-
16. वही] पृष्ठ 113-
17. बंधोपाध्याय] शेखर] 2016] पलासी से विभाजन तक और उसके बाद] आधुनिक भारत का इतिहास, ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड] नई दिल्ली] पृष्ठ 111-
18. मैडीसन] एंगस] 2001] द वल्ड इकोनॉमी ए मिलेनियम पस्पेक्टिव डवलपमेण्ट सेण्टर ऑफ़ द आर्गेनाइजेशन फार इकोनोमिक कोऑपरेशन एण्ड डवलपमेण्ट] पेरिस] फ्रांस] पृष्ठ 111-
19. 19-संविधान सभा बहसें खंड 7] 8 और 11 ¼भूमि धर्म और संपत्ति अधिकार पर बहस)] लोकसभा सचिवालय-
20. 20-भारत का संविधान ¼26 नवम्बर] 2021 को यथाविद्यमान)] प्रकाशक] विधि और न्याय मंत्रालय] विधायी विभाग] भारत सरकार] नई दिल्ली-
21. एम सिद्दीक़ ¼मृ½ बनाम महंत सुरेश दास एवं अन्य] अयोध्या वर्डिक्ट] 2019] 18 SCC 1.
22. सुप्रीम कोर्ट सिविल रिट याचिका संख्या 000269@2025